SERBD- अंतरराष्ट्रीय हिंदी शोध पत्रिका नव अन्वेषण
ISSN (Online): XXXX-1234
Volume 02 Issue 03, July - Sept, 2022

हिंदी के प्रतिनिधि नाटकों में लोकगीतों का प्रयोग

(व्याख्यान)

लेखक

डॉ. नितीन धवडे
हिंदी विभाग प्रमुख,
मुधोजी महाविद्यालय, फलटण,
जि. सातारा, (महाराष्ट्र)।
Email: dr.nitindhavade@gmail.com

सारांश(Abstract):– लोकगीत हमारी लोक–संस्कृति के प्रमुख अंग हैं। लोकगीतों के माध्यम से ही लोक–संस्कृति और लोक–जीवन की वास्तविक पहचान होती है। हमारी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने में इन गीतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। लोक–जीवन का सच्चा, स्वाभाविक और सजीव चित्र लोकगीतों के माध्यम से उजागर होता है। नाटकों को लोकधर्मी बनाने के उद्देश्य से एवं उन्हें लोक–जीवन के अधिक निकट स्थापित करने की दृष्टि से हिंदी के कुछ नाटककारों ने अपने नाटकों में लोकगीतों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। लोकभाषा और लोकशैली में प्रयुक्त ये लोकगीत पारिवारिक और सामाजिक जीवन के बड़े सजीव चित्र हमारे सामने उजागर करते हैं। आलोच्य नाटकों में प्रयुक्त श्रम गीत, विवाह संस्कार संबंधी गीत, त्यौहार संबंधी गीत, मंगल गीत, ऋतु संबंधी गीत, शृंगार गीत आदि लोकगीतों से हमारी संस्कृति के दर्शन तो होते ही है, साथ ही गाँवों का सहज, स्वाभाविक लोक–जीवन इन गीतों से प्रकट होता है। नाटकों को लोक–जीवन से जोडकर, लोक जीवन के हर्ष, उल्लास, उमंग की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों द्वारा हुई दिखाई देती है।

keywords : ***लोकगीत, नाटक, लोक–साहित्य, लोक–जीवन, लोक–संस्कृति, लोक–मानस, श्रम गीत, विवाह संस्कार संबंधी गीत, त्यौहार संबंधी गीत, मंगल गीत, ऋतु संबंधी गीत, शृंगार गीत, आलोच्य, संस्कृति, लोकधर्मी, दर्शन, प्रयुक्त, उजागर आदि।***

लोक–साहित्य के अंतर्गत लोकगीतों का क्षेत्र अत्यंत समृद्ध एवं व्यापक है। अतः लोक–साहित्य में लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। हमारी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और उसे आगे बढाने में इन लोकगीतों का बड़ा सहयोग रहा है। लोकगीतों के माध्यम से ही किसी भी देश, किसी भी क्षेत्र की लोक–संस्कृति और लोक–जीवन की वास्तविक पहचान होती है। लोक–संस्कृति का संपूर्ण आंतरिक स्वरुप लोकगीतों से व्यक्त होता है। "लोकगीत भारतीय प्राचीन सांस्कृतिक परंपराओं को पुनर्जीवित करने का दायित्व निभाते हैं। जीवन की सहज संवेदनाओं को चाहे वह सुख की अनुभूति हो या पीड़ा की, इन लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गाँवों की आत्मा की सुगंध इन लोकगीतों में वास करती है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि लोकगीत लोक–संस्कृति, लोक–संवेदनाओं, लोकभाव और लोक–चिंतन के परिचायक होते हैं। वे हमारी लोक–संस्कृति के प्रमुख अंग हैं।

प्राचीन काल से लोकगीत लोकमानस का मनोरंजन करते रहे हैं। वर्ण्य–विषय के आधार पर इन लोकगीतों के अनेक प्रकार मिलते हैं। जैसे संस्कार संबंधी, व्रत एवं त्यौहार संबंधी, श्रम संबंधी आदि। लोकगीत वह गेय गीत है, जिससे लोक–मानस का मनोरंजन सदियों से होता रहा है। गायकों की संख्या के आधार पर लोकगीतों को दो भागों में विभाजित किया गया है। एकल और सामूहिक। एक व्यक्ति द्वारा गाये जानेवाले गीत को 'एकल' कहा जाता है । परंतु कुछ ऐसे भी लोकगीत हैं जो सामूहिक रूप से ही गाये जाते हैं। लोकगीतों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। "लोकगीतों में मनुष्य की अपनी पूरी दुनिया रहती है। मानव के सुख दुःख, उसके हँसने–रोने की कथाएँ, उसके प्यार–मुहब्बत की रंगीन बातें, और उसकी मस्ती, संक्षेप में उसके जीवन का सब कुछ इन गीतों में तैरता रहता है।"[2] उसके वर्ण्य विषय अत्यधिक व्यापक एवं विस्तृत हैं। लोकगीतों के कारण ही मानव जीवन के विभिन्न संस्कार तथा उत्सव आदि में एक दृष्टि से पूर्णता आ जाती है। लोकगीतों के बिना सारे संस्कार, उत्सव अधूरे ही हैं। इस तरह लोकगीत लोक समुदाय की भावात्मक निधि है। लोक–जीवन का सच्चा, स्वाभाविक और सजीव चित्र लोकगीतों में मिलता है।"लोकगीत ग्राम्य संस्कृति के प्रतिबिंब है। आदिकाल से ही लोकगीतों के साथ जन जीवन स्पंदित और गतिमान होता रहा है। वर्तमान में भी लोकगीत हमारी रचनात्मक शक्ति का प्रेरक है। लोकगीतों में लोक–जीवन का समूचा इतिहास समाहित रहता है।"[3] अतः लोकगीत लोक–साहित्य और लोक–संस्कृति की अमूल्य निधि है। इसी अमूल्य निधि को हिंदी के कुछ प्रतिनिधि नाटककारों ने अपने नाटकों में प्रयुक्त कर नाटकों को लोक–जीवन के निकट स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है। जिनमें संस्कार–ध्वज, पोस्टर, साँच कहूँ तो, जसमा ओडन, दूर का आकाश, काला–मुँह, बाँसुरी बजती रही, नारद–मोह, आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

आलोच्य नाटकों में लोकगीतों की शैली के आधार पर ही गीतों को प्रयुक्त किया गया है। इन गीतों से हमारे लोकभूमि की गंध आती है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के 'संस्कार–ध्वज' नाटक में श्रम गीत और होली गीत का सुंदर प्रयोग हुआ है। लोक समुदाय द्वारा श्रम करते हुए जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें श्रम संबंधी गीत कहा जाता। नाटक में स्त्री–पुरुषों को श्रमरत दिखाया है और स्त्रियां गा रही हैं –

"यहि ठइयाँ मोतिया हेराइगै हो रामा,
कहाँ लग ढूँढूँ।
कोठवा पे ढूँढेऊँ अटारिया पै ढूँढेऊँ
ढूँढि आइऊँ सैया की सेजरिया हो रामा,
कहाँ लग ढूँढूँ।
सासु जी से पुछेऊँ ननद जी से पूछेऊँ
सइयाँ से पूछते लजाय गयऊँ रामा
कहाँ लग ढूँहूँ।" (संस्कार–ध्वज, पृ. 27)

विभिन्न ऋतुओं में भिन्न–भिन्न प्रकार के जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें ऋतु संबंधी गीत कहते हैं। कजरी, बारहमासा, होली आदि इसी प्रकार के गीत हैं। 'संस्कार–ध्वज' में प्रयुक्त होली गीत निम्नांकित है।

"(संगीत बजने लगता है। लोग फाग गायन शुरु करते हैं।)
सखी आजु अनुध्या रची होरी
केकरे हाथ मृदंग भल
सोहे केकरे हाथ मजीरा भली।
राम के हाथ मजीरा भली
लछिमन के हाथ मजीरा भली।" (संस्कार–ध्वज, पृ. 79)

लोकभाषा का प्रयोग लोकगीतों की प्रमुख विशेषता है। उपर्युक्त दोनों लोकगीतों में लोकभाषा का सार्थक प्रयोग दिखाई देता है।

शंकर शेष के 'पोस्टर' में बाजार जाते समय गाए जाने वाले लोकगीत का सुंदर प्रयोग हुआ है। बाजार जाने के प्रयोजन की सुंदर अभिव्यक्ति इस लोकगीत में मिलती है। (सभी मजदूर नाचने लगते हैं)

"मंडई जावो मंडई जावो मंडई जावो रे
संगी चल मंडई जावो रे।
चिउरा खावो, खलिया खावो केरा खावो रे

संगी चल मंडई जावो रे।
फुंदरा लावो, बिंदिया लावो, पटकू बारे
संगी चल मंडई जावो रे।" (पोस्टर, पृ. 30)

एक सुंदर लोकगीत की नजाकत, भाव सौंदर्य, लयात्मक अभिव्यक्ति क्या होती है, इसे उपर्युक्त लोकगीत में देखा जा सकता है। शांता गांधी के 'जसमा ओडन' और प्रभाकर श्रोत्रिय के 'साँच कहूँ तो' इन नाटकों में विवाह संबंधी लोकगीतों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। नाटकों में विवाह संबंधी लोकगीतों के कुछ उदा. निम्नांकित हैं।

विवाह की तैयारी संबंधी गीत :–

"मैं तो केल रे चढूँ, चम्पे उतरुँ
मैं तो जोऊँ मेरे बीराजी की बाट रे
लगन आये पास जी
मेरे कौन आये कौन आ रहे
एक आया नहीं माडी जाया वीर रे
लगन आये पास जी।'' (जसमा ओडन, पृ. 47)

कन्या पक्ष का स्वागत गीत :–

"घर मेरे समधनिया भली आयी रे
समधनियों को बैठन आसन लाओ रे
घर मेरे समधनिया भली आयी रे।'' (जसमा ओडन, पृ. 49)

विदा गीत :–

"सेजडिया सुहावन लाड़ी चलो अपने देश रे
ब्याहता हुई मेरी प्यारी लाड़ी चलो अपने देश रे।" (जसमा ओडन, पृ.57)
"थारे आल्या दिवाल्या गुडिया घरी
वनखंड की कोयल वनखंड छोड़ क्यों चली।" (साँच कहूँ तो, पृ. 31)

वर की आरती उतारने तथा तिलक लगाने संबंधी गीत :–

"आरती लाओ ने कुंकुम लाओ,
वर को तिलक लगाओं सुहागिन।
आरती उतारो ने लेओ जी बलैयाँ
डेली पे वर के बधाओ सुहागिन।" (साँच कहूँ तो, पृ. 30)

'साँच कहूँ तो' में विरह के प्रसंग में प्रयुक्त गीत पर लोकगीत का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जैसे–

"सखियाँ पिया गये परदेस में नयना ढल के नीर
ओलूँ आवै पीव की जिवडा धरे न धीर।'' (साँच कहूँ तो, पृ. 55)

गोविद चातक के तीनों नाटक 'काला मुँह', 'बाँसुरी बजती रही' और 'दूर का आकाश' में लोकगीतों का प्रयोग मिलता है। 'काला मुँह' नाटक में प्रयुक्त (पृ. 96) मेले का गीत और जाख देवता की पालकी का मंगलगीत लोक–जीवन के हर्षोल्लास को ही दर्शाते हैं। इसी तरह 'बाँसुरी बजती रही' में (पृ. 148, 156, 182) भी लोकगीतों का सुंदर प्रयोग हुआ है। 'दूर का आकाश' में प्रयुक्त वर्षा ऋतु संबंधी तथा श्रम गीत का प्रयोग मिलता है। इन गीतों के प्रयोग के बारे में सुभाष रावत ने लिखा है, ''इसी प्रकार के गीतों का प्रयोग नाटक को नई संवेदना प्रदान करता है। वे गीत लोक–जीवन के बहुत निकट हैं।''[4]

वर्षा ऋतु संबंधी गीत :–

"आए बादल छाए बादल, छाई गगन घटा भारी
गाता फिरे बावरा राहों पर हरमन तोता हारी।
वन में खिला फूल, फूल को गया तोड शिकारी
शिकारी गया शिकार को, फूल सूनी सेज अटारी।'' ('दूर का आकाश, पृ. 44)

श्रम गीत :–

"काटो रे काटो हैय्या रे हैय्या।
काटो रे काटो, जंगल काटो रे भैय्या।
जंगल काटो, मंगल बांटो रे भैया ।
हैय्या रे हैय्या।" ('दूर का आकाश, पृ. 49)

सरजूप्रसाद मिश्र के 'नारद–मोह' में भी श्रृंगार गीत और मंगल गीत का सुंदर प्रयोग हुआ है।

शृंगार गीत :–

''काहे को अँचरा उडाए पुरवइया ?
काहे को जियरा जलाए पुरवईया ?
सोई थी अपनी अटरिया पे रामा,
प्यास का बिरवा मन में जामा
नैनों में फूल खिले रे सजनी,
नीदं न आए, लगे जुग रचनी।'' (नारद–मोह, पृ. 37)

मंगल गीत :–

"शुभ दिन आया, मंगल दिन आया,
मन के नभ में उड़ी चकोरी

हर्षित हो गई कोमल काया।'' (नारद–मोह, पृ. 73)

डॉ. चंदुलाल दुबे के शब्दों में ''नाटक के तीनों गीतों की शब्द–रचना लोकगीतों की लय एवं मिठास से युक्त है। प्रस्तुति के समय उन्हें लोकधुनों में बाँधकर लोकधर्मिता को पूर्णतः उजागर किया जा सकता है।''[5] इस प्रकार नाटकों की लोकधर्मिता बढाने में उनमें प्रयुक्त लोकगीतों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। कन्हैयालाल गौड़ के शब्दों में, ''लोकगीत ग्रामीण जीवन की अभिव्यक्ति है, जिसमें उनके व्यस्त दैनिक जीवन के दर्शन होते हैं। गीतों में व्याकरण दोष होना स्वाभाविक है। किंतु भाषा और भाव की दृष्टि से गरिमामय होते हैं। किसी–किसी लोकगीत की भाषा इतनी क्लिष्ट होती है कि, उसके भावों को समझना मुश्किल हो जाता है। इसके अतिरिक्त संगीत की दृष्टि से भी इन्हें लयबद्ध तरीके से गाया भी जा सकता है। संगीत तत्व इनमें समाहित रहता है।''[6] नाटकों में प्रयुक्त लोकगीतों में हम इन्हीं बातों को देख सकते हैं। इन लोकगीतों से हमारी संस्कृति के दर्शन होते हैं। गाँवों का सहज, स्वाभाविक लोक–जीवन हमें इन गीतों में दिखाई देता है। नाटकों में लोकगीतों के प्रयोग से पारिवारिक और सामाजिक जीवन के चित्र बड़े व्यापक रूप में उजागर हुए हैं।

आलोच्य नाटकों में प्रयुक्त लोकगीतों के प्रयोग संबंधी उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि, नाटकों को लोक–जीवन से तथा लोकभूमि से जोडने की दृष्टि से इन लोकगीतों ने बड़ा सहयोग दिया है। लोक–जीवन के हर्ष, उल्लास, उमंग की अभिव्यक्ति इन लोकगीतों द्वारा हुई हैं। लोक–संस्कृति को उजागर करने की दृष्टि से नाटकों में प्रयुक्त लोकगीतों का योगदान उल्लेखनीय ळें

आधार ग्रंथ सूची :–

1. सरजूप्रसाद मिश्र – नारद–मोह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1977।
2 डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल – संस्कार–ध्वज, श्रीराम प्रकाशन, आगरा, 1978।
3. डॉ. शंकर शेष – पोस्टर, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1983।
4. शांता गांधी – जसमा ओडन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1984।
5. प्रभाकर श्रोत्रिय – साँच कहूँ तो, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, 1993।
6. गोविंद चातक – संपूर्ण रंग नाटक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1998।

----------00--------

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लक्ष्मी पांडेय – 'लोकगीतों में धडकती ग्रामीण संवेदनाएँ', पृ. 12, वीणा, (पत्रिका), वर्ष–68, अंक–12, 1995, 24–30।
2. शंभुप्रसाद बहुगुणा – 'लोक–साहित्य में लोक–जीवन की व्यापक अनुभूति', सम्मेलन, (पत्रिका), लोक–संस्कृति विशेषांक, भाग–39, संख्या 2–3, 1995, 193–198।
3. सुरेशचंद्र शर्मा – 'हिंदी लोकगीतों की बिंब योजना', पृ. 76, अक्षरा, (पत्रिका), अंक–30, 1995।
4. गोविंद चातक – संपूर्ण रंग नाटक, पृ. 18, (निर्देशक का वक्तव्य से), तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली,1998।
5. सरजूप्रसाद मिश्र – नारद–मोह, पृ. 17, ('लोकधर्मी नाट्य परंपरा और नारद–मोह' से), वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1977।
6. वेबसाइट पत्रिका – चौमासा, कन्हैयालाल गौड़ – 'सोंधवडी गीत में पनिहारिन', चौमासा, (पत्रिका), जुलाई–अक्तूबर 2006, 190–192, वर्ष–23, अंक 71, http://www.google.co.in/Search/Hindi Patrika choumasa Ask.comweb.Department of Culture M.P.

----------00--------